डॉ नन्द बहादुर सिंह

हिंदी कहानी का उद्भव एवं विकास

हिन्दी कहानी का उद्भव और विकास भारत की प्राचीन कथाओं - जातक कथा, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि से न होकर अंग्रेजी साहित्य की 'शॉर्ट स्टोरी से' माना जाना चाहिए । पश्चिम में कहानी एक लोकप्रिय साहित्य विद्या के रूप में स्थापित हो चुकी थी । हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में पश्चिम का कहानी साहित्य धीरे-धीरे लोकप्रिय होने लगा था । उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक और बीसवीं सदी के आरम्भिक वर्षों में बंगला और मराठी में कहानी लेखन का आरम्भ हुआ । हिन्दी साहित्यकारों ने इन्हीं से प्रेरणा ग्रहण कर कहानी लेखन का श्री गणेश किया। देखते ही देखते यह साहित्य विधा अत्यन्त लोकप्रिय हो गई और कहानीकारों का एक विशाल वर्ग सामने आने लगा।

देखा जाये तो हिन्दी के कहानी साहित्य में वास्तविक मोड़ तब आया जब प्रेमचन्द की रचनायें हिन्दी की पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी । शीघ्र ही कहानी लोकप्रिय और साहित्यिक विधा के रूप में स्थापित हो गई । इस पाठ के अगले पृष्ठों में हिन्दी कहानी के प्रादुर्भाव और विस्तार की रोचक सामग्री आपको देखने को मिलेगी।

हिन्दी कहानी का आविर्भाव

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिन्दी में हम खड़ी बोली के गद्य का उन्मेष देखते हैं और हिन्दी गद्य के विकास के साथ ही हिन्दी कहानी को उत्पत्ति के सूत्रों को खोजा जा सकता है ।सन् 1800 में अपने अफसरों को स्थानीय भाषाएँ सिखाने के लिए अंग्रेजों ने फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की और कुछ शिक्षकों को हिन्दी कहानी लिखने का कार्य सौंपा जिनमें प्रमुख हैं - लल्लूलाल कृत्त बैताल पचीसी और प्रेमसागर, सदल मिश्र कृत "नासिकेतोपाख्यान" । इसी समय मुंशी ईशा अल्ला खाँ ने रानी केतकी की कहानी' लिखी जिसे डॉ.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय जैसे विद्वान हिन्दी की पहली कहानी मानते हैं।इसी दौरान सदासुखलाल ने 'सुखसागर' की रचना की । किन्तु इन रचनाओं के कथासूत्र संस्कृत से जुड़े हैं और इन रचनाओं में भाषा और शिल्प का प्रदर्शन मात्र है। इनमें से किसी रचना को मौलिक कहानी नहीं कहा जा सकता। ईशा अल्ला खाँ की रानी केतकी की कहानी' प्रयोगात्मक रूप से लिखी गयी थी किन्तु कलात्मक दृष्टि से इसका रचना विधान आधुनिक कहानी जैसा नहीं था । हिन्दी कहानी का आविर्भाव हम भारतेन्दु युग की पत्रिकाओं में पाते हैं । किन्तु 1867 से 1900ई. तक प्रकाशित रचनाओं में कथा तत्त्व का समावेश तो मिलता है किन्तु स्वतंत्र कथा-रचना नहीं मिलती।

हिन्दी कहानी के विकास में सन् 1900 में सरस्वती का प्रकाशन एक निर्णायक घटना की तरह है । 'सरस्वती' के आरम्भिक अंकों में कहानी को आख्यायिका या गल्प की संज्ञा से सम्बोधित किया गया है । किन्तु यह भी सच है कि हिन्दी कहानी के आरम्भ में जो भी प्रयत्न हुए वे सरस्वती के मंच से ही हुए।

हिन्दी की प्रथम कहानी

हिन्दी की प्रथम कहानी कौन-सी है इस बात को लेकर विद्वानों में मतभेद है । 1900 में प्रकाशित किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' कहानी पर 'टैम्पैस्ट' की छाया है अत: वह मौलिक कहानी नहीं है। 1903 में प्रकाशित रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' से पूर्व 1901 में छत्तीसगढ़ 'मित्र' में माधवप्रसाद सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी को श्री देवीप्रसाद शर्मा हिन्दी की प्रथम कहानी मानते हैं। स्वयं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल बंगमहिला की दुलाईवाली कहानी, जो 1907 में प्रकाशित हुई थी, हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी मानते हैं। डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार हिन्दी की प्रथम कहानी किशोरीलाल गोस्वामी की 'प्रणयिनी परिणय' है जो 1887 में लिखी गयी थी किन्तु स्वयं लेखक ने इस रचना को उपन्यास कहा है । राजेन्द्र यादव हिन्दी की प्रथम कहानी चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की 'उसने' कहा था को मानते. हैं क्योंकि 1915 में छपी यह कहानी सजीव स्थानीय विवरण और पूर्वाभास शैली के प्रयोग और उपखण्डों के संघटन के कारण प्रथम मौलिक कहानी है। इस सवाल पर भिन्न मत हैं किन्तु ऐसा लगता है कि माधवप्रसाद सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' हिन्दी की पहली कहानी है किन्तु इस दिशा में होने वाले अनुसंधान इस स्थापना को बदल भी सकते हैं।

यह एक सुखद संयोग है कि हिन्दी कहानी को अपने आरम्भिक काल में ही प्रेमचन्द और जयशंकर प्रसाद जैसे कहानीकार मिले जिनकी साधना ने हिन्दी कहानी के विकास को ऐसी गति प्रदान की कि यह विधा कलात्मक दृष्टि से बहुत शीघ्र अपने शीर्ष पर पहुँच गयी । यहाँ यह तथ्य भी रेखांकित करने योग्य है कि हिन्दी में जिस युग में कहानी लेखन की परम्परा आरम्भ हुई तब तक पश्चिम में कहानी अपने शीर्ष पर पहुँच चुकी थी । पश्चिम में सभी अग्रणी कहानीकार बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से पहले ही हो चुके थे।

प्रेमचन्द और प्रसाद हिन्दी कहानी के विकास युग में दो प्रवृत्तियों के प्रतिनिधियों के रूप में प्रतिष्ठित हैं । इन्हीं दोनों प्रवृत्तियों का अनुकरण और प्रभाव पूरे विकास युग पर परिलक्षित होता है । प्रेमचंद मूलत: आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी परम्परा के प्रतीक हैं तो प्रसाद भावमूलक परम्परा के अधिष्ठाता हैं । तुलनात्मक दृष्टि से प्रसाद की भावमूलक परम्परा का अपेक्षाकृत कम कहानीकारों ने अनुकरण किया जबकि प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा को अधिक कहानीकारों ने स्वीकार किया । व्यापक रूप से विकास युग की समूची कहानी यात्रा को प्रेमचन्द और प्रसाद की कहानी कला के माध्यम से समझा जा सकता है । इसलिए इन दोनों कहानीकारों पर विस्तारपूर्वक विचार करना तथा इनकी कहानी कला की विवेचना करना आवश्यक लगता है।

प्रसाद और उनकी कथाधारा

वस्तुत: प्रसाद मानव मन के चितरे हैं इसलिए प्रसाद की कहानियों में प्रेम, करूणा, अहिंसा, त्याग, राष्ट्रप्रेम जैसे मूल्यों की स्थापना के प्रति आग्रह मिलता है । कौतूहल, जिज्ञासा, मनोरंजन, रोमांस, साहसिकता के साथ-साथ कथा की विधा का जो प्रयोग एक विशेष प्रकार की मूल्यवत्ता को स्थापित करने के लिए प्रसाद करते हैं वह उनकी कहानी कला का वैशिष्ट्य है । उनकी कहानियों में छायावादी कलात्मकता, भावुकता, प्रतीकात्मकता और मानवीकरण

मिलता है।'प्रतिमा', 'करूणा की हवज्य', 'प्रलय', 'दुखिया' जैसी कहानियों में ये तत्त्व मिल जाते हैं।

प्रसाद की कहानियाँ शिल्प की दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है । प्रसाद अपनी कहानियों को रचाव के स्तर पर अलग तरह की ऊँचाई प्रदान करने का प्रयास करते हैं इसलिए उनकी कहानियाँ कहीं गद्यगीत शैली में लिखी गयी हैं तो कहीं प्रतीकात्मक शैली में । वे कहानी के विकास में घटनाओं का संयोजन बड़ी कुशलता से करते हैं, पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को पूरे तीखेपन से उभारते हैं, कहानी को धीरे-धीरे चरम सीमा की ओर ले जाते हैं, चरम सीमा कभी किसी मनोवैज्ञानिक सत्य की प्रतिष्ठा करते हैं तो कहीं घटना की नाटकीयता से । किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि प्रसाद अपने समय की समस्याओं के प्रति पूरी तरह उदासीन थे तथा उनकी कहानियों में यथार्थ जीवन का चित्रण ही नहीं है । तत्कालीन समाज की गरीबी, निरीहता शोषण और असमानता को प्रसाद ने अपनी कहानियों में पूरा स्थान दिया है । 'चूड़ीवाली' कहानी में एक वैश्या अपनी पवित्रता और संयम के साथ अपनी घृणित दुनिया से निकलकर एक प्रतिष्ठित व्यक्ति विजयकृष्ण की बहू बनकर अपने संकल्प को सफलता में बदल देती है । 'नीरा कहानी में एक धनी और प्रतिष्ठित व्यक्ति अकिंचन और अपाहिज नीरा से विवाह कर समाज की सारी मान्यताओं को ठुकरा देता है।

प्रसाद स्कूल के कहानीकार -

यद्यपि प्रेमचन्द की कहानी कला और प्रसाद की कहानी कला के तत्त्व एक जैसे ही हैं किन्तु अन्तर यही हैं कि प्रेमचन्द जहाँ यथार्थवादी हैं वहीं प्रसाद कल्पनाशील । दोनों की जीवन के प्रति दृष्टियाँ भिन्न हैं तो दोनों में जीवन दर्शन की भिन्नता भी है । प्रेमचन्द जीवन की समस्याओं से रूबरू होते हुए जन जीवन के चित्रकार हैं तो प्रसाद की कला दृष्टि भावनात्मकता, करूणा, प्रेम, आनन्द और सौन्दर्य से बनी हैं । उनके लिए कहानी का लक्ष्य इन्हीं मूल्यों की अभिव्यक्ति है । प्रसाद स्कूल के प्रमुख कहानीकार इस प्रकार हैं - आचार्य चतुरसेन शास्त्री, रामकृष्ण दास, बेचन शर्मा उग्र', वानस्पति पाठक, विनोदशंकर व्यास।

प्रेमचन्द और उनकी कथाधारा

प्रेमचन्द ने ढाई सौ से अधिक कहानियाँ लिखीं तथा अपने पूरे जीवनकाल में वे कहानियाँ लिखते रहे । 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न' से लेकर 'कफन' तक उनकी कहानियाँ पर्याप्त लम्बी तथा महत्त्वपूर्ण हैं और इस यात्रा के विभिन्न पड़ावों पर प्रेमचन्द की रचनात्मक चेतना को विभिन्न स्तरों पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, प्रेमचन्द की कहानियों की दुनिया समान नहीं है, इसलिए डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा है कि प्रेमचन्द की 'कहानियाँ कला और विषय वस्तु के लिहाज से काफी ऊँचे-नीचे स्तरों की हैं..... उनके उपन्यासों के बीच उतना बड़ा फासला नहीं है जितना उनकी कहानियों के बीच है' किन्तु प्रेमचन्द हिन्दी के पहले कहानीकार हैं जिन्होंने कहानी विधा की कल्पनाविलास और नीति उपदेश की स्थूलताओं से मुक्त कर सामाजिक यथार्थ की जमीन पर खड़ा किया, उन्होंने कहानी को पाठकों के मनोरंजन तथा मानसिक वृत्ति के साधन के साथ-साथ उसे सामाजिक सरोकारों से जोड़कर पाठकों में कहानी के द्वारा सामाजिक चेतना के प्रकाश पर बल दिया । प्रेमचन्द के लिए कहानी लेखन का

सम्बन्ध बुनियादी तौर पर सामाजिक परिवर्तन से है । उन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया है कि, 'मैं और चीजों की तरह कला को भी उपयोगिता की तुला पर तोलता हूँ।' वे कहानी के विषय में जो सोचते थे, इन शब्दों से स्पष्ट हो जाता है' हमने जिस युग को भी पार किया है उसे जीवन से कोई मतलब न था, हमारे साहित्यकार कल्पना की सृष्टि खड़ी कर उसमें मनमाने तिलिस्म बाँधा करते..... साहित्य से जीवन का कोई लगाव है, यह कल्पनाहीन था, कहानी है, जीवन है । दोनों परस्पर विरोधी वस्तुएँ समझी जाती थीं। ' स्पष्ट है कि प्रेमचन्द ने हिन्दी कहानी को जीवन तथा उसके सरोकारों के सामने लाकर खड़ा कर दिया।

'पंच परमेश्वर' कहानी में प्रेमचन्द की यह आस्था पूरी तन्मयता के साथ मुखरित हुई हैं, किन्तु मनुष्य का सद्वृत्तियों की विजय के चक्कर में प्रेमचन्द उन मूल्यों का अनुमोदन कर जाते हैं जो अपनी प्रासंगिकता खो चुके हैं। 'बड़े घर की बेटी' कहानी में प्रेमचन्द को अहसास तो हो गया है कि संयुका परिवार प्रथा अब खण्ड हो चुकी है तथा उसे जिलाए रख सकना अब असम्भव नहीं है, किन्तु कहानी का अन्त जिस काल्पनिक आदर्शवाद की स्थापना के साथ होताहै। वह यथार्थ जीवन के विरूद्ध तो है ही, ऐसा लगता है कि प्रेमचन्द ढहती संयुक्त परिवार व्यवस्था की हिमायत कर रहे हैं।

तीसरे तथा अन्तिम दौर में प्रेमचन्द न केवल जीवन यथार्थ को अपनी रचनात्मक चेतना का अंग बना लेते हैं । प्रत्युत यथार्थ को रूपायित करते समय उनकी आदर्शवादी भंगिमा भी यथार्थवादी हो जाती है, प्रेमचन्द का यह रूप हमें 'शतरंज के खिलाड़ी, 'बड़े भाई साहब', 'बूढ़ी काकी', 'ठाकुर का कुआँ', 'सवा सेर गेहूँ, 'गुल्ली डण्डा, 'नशा', 'पूस की रात' तथा 'कफन' जैसी कहानियों में मिलता है, 'शतरंज का खिलाड़ी के मिर्जा सज्जादअली और मीर रोशन अली राष्ट्र की समस्याओं तथा हलचलों से बेखबर अपनी जायदादों के सहारे ऐय्याशी कर रहे थे तथा अपने शौक शतरंज में डूबे थे।

'पूस की रात तथा 'कफन' उपर्युक्त कहानियों से आगे की कहानियाँ हैं, 'पूस की रात' में खेत के उजड़ने से हलकू प्रसन्न है जैसे उसने खेत के मालिक से बदला ले लिया है, उसकी पत्नी दुःखी है कि अब मजदूरी करके माल गुजारी भरनी पड़ेगी, पर हलकू इस भयानक स्थिति के अहसास के बावजूद प्रसन्न है क्योंकि खेत उजड़ने पर अब ठंड की रात में खेत पर सोना तो नहीं पड़ेगा, 'कफन' के घीसू-माधव में तो सारा पारिवारिक और सामाजिक सद्भाव बुझ चुका है । उन दोनों को उस बुढ़िया के मर जाने की प्रतिष्ठा है जिसने उनके घर को व्यवस्था दी । पर उनके लिए बुढ़िया से ज्यादा कीमत भुने हुए आलुओं की है, गर्म-गर्म आलुओं को जल्दी-जल्दी खाने की घटना उनकी असहाय गरीबी का अहसास देती है, घीसू को बीस साल पहले ठाकुर की बारात में खाये व्यंजनों की याद आती है।

प्रेमचन्द की कहानियों की सबसे बड़ी शक्ति इस तथ्य में हैं कि वे कहानी लिखते नहीं, कहते हैं । डी. रामविलास शर्मा ने सवा सेर गेहूँ के प्रारम्भिक अंश 'किसी गाँव में शंकर नाम का एक कुरमी किसान रहता था । सीधा-सादा, गरीब आदमी था, अपने काम से काम, न किसी के लेने में न किसी के देने में' - उद्धृत करते हुए लिखा है 'कथा कहने का ढंग हिन्दुस्तान के हर गाँव में कहानी कहने वाला और सुनने वाला जानता है प्रेमचन्द की हर कहानी का लहजा

इतना सहज और सरल है कि पाठक को खींचता है, प्रेमचन्द के दिमाग में शायद यह बात रही हो कि वे केवल बुद्धिजीवी वर्ग के लोगों के लिए कहानी नहीं लिख रहे, वे देश के अर्द्ध-शिक्षित, अनपढ़ तथा गाँवों में बसने वाले साधारण व्यक्ति तक अपनी बात पहुँचाना चाहते थे । इसलिए उन्होंने इस पद्धति को अपनाया जिससे यहाँ का पाठक या श्रोता अच्छी तरह परिचित था।

प्रेमचन्द स्कूल के कहानीकार -

प्रेमचन्द की कहानी कला का फलक बहुत विस्तृत है और प्रेमचन्द ने हिन्दी कहानी को वह ऊँचाई प्रदान की जिसका अनुकरण आज तक की पीढ़ियाँ कर. रही हैं - विश्वम्भरनाथ जिज्जा, जी. पी. श्रीवास्तव, राजा राधिकारमण सिंह, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', पंडित ज्वालादत्त शर्मा, गोविन्दवल्लभ पन्त, सुदर्शन, वृंदावनलाल वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी ।

चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' -

विकास युग में ही चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' ऐसे कहानीकार हैं जिन्हें प्रसाद 'या प्रेमचन्द की परम्परा में नहीं रखा जा सकता किन्तु वे इस युग के बहुत महत्त्वपूर्ण कहानीकार हैं । हो सकता है उन्होंने और भी कहानियाँ लिखी हों किन्तु अभी तक उनकी तीन कहानियाँ ही प्रकाश में आयी हैं - उसने कहा था, सुखमय जीवन, बुद्धू का कांटा । ये तीनों ही सामाजिक कहानियाँ हैं जिनमें बुद्धू का कांटा और सुखमय जीवन तो पठनीय और रोचक कहानियाँ है। उनकी 'उसने कहा था' हिन्दी की एक क्लासिक कहानी है । कहानी के आरम्भिक युग में यह कहानी एक चमत्कार है क्योंकि इस कहानी में शिल्प की नवीनता, वातावरण की सृष्टि, भाषा की प्रौढ़ता, चरित्र-चित्रण की पूर्णता आदि ऐसे गुण हैं जो इस कहानी को विशिष्ट बनाते हैं । इसीलिए राजेन्द्र यादव कहते हैं कि 'उसने कहा था' हिन्दी कहानी की पहली कहानी है । इस कहानी में पूर्वदीप्ति शैली का प्रथम बार उपयोग हुआ है ।

संक्रान्ति काल -

हिन्दी कहानी के विकास युग में प्रसाद और प्रेमचंद दो ऐसे कहानीकार हैं जो समूचे विकास युग की प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं । प्रसाद और प्रेमचंद की कहानियाँ दो प्रवृत्तियों की प्रतीक है ।

प्रसाद और प्रेमचंद के बाद हम पाते हैं कि कहानी ही नहीं जीवन में ही अनेक प्रकार की प्रवृत्तियाँ विकास पर रही हैं, जीवन दर्शन और व्यक्ति विश्लेषण की सर्वथा नयी प्रविधियाँ उदित हो रही है । इन प्रविधियों से कहानी कला का विस्तार हो रहा है और नये-नये प्रयोगों का मार्ग प्रशस्त हो रहा है । इस युग की कहानियों पर विचार करने से पूर्व इस युग की प्रवृत्तियों पर विचार कर आवश्यक है ।

मनोविज्ञान -

प्रेमचंद तो कहानी में किसी मनोवैज्ञानिक सत्य की प्रतिष्ठा आवश्यक मानते थे । संक्रान्ति युग तक आते-आते रचनाकारों के लिए व्यक्तित्व का मनोजगत भी उतना ही प्रमुख हो गया जितना बाहरी संसार । पश्चिम से आये मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के ज्ञान ने इस युग के कथाकारों को यह समझने पर विवश किया कि मनुष्य का अन्तर्जगत उसके बाहरी जगत से कहीं अधिक प्रभावशाली है और उसके इस जगत की जटिलताएँ उसे हर क्षण प्रभावित करती रहती है ।

मनोविश्लेषण पद्धति से हमें व्यक्ति के अन्तर्जगत की गुत्थियों को समझने की क्षमता भी प्राप्त हुई तथा व्यक्तित्व की जटिलताओं को विश्लेषित करने की समझ भी मिली ।
मनोविश्लेषण द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व, चरित्र, आचरण और उसके व्यवहार का आकलन किया जाने लगा । इतना ही नहीं इसी दृष्टिकोण से सामाजिक प्रश्नों को भी समझने का प्रयास किया जाने लगा । अपराध, विद्रोह, पाप, पतन जैसे पत्ययों को नयी तरह से समझने की प्रक्रिया आरम्भ हुई तो पापी, विद्रोही, अपराधी व्यक्तियों का आकलन भी करूणा और दया के साथ करने की परम्परा आरम्भ हुई । स्त्री-पुरूष सम्बन्धों को नये सिरे से व्याख्यायित किया जाने लगा तथा इन सम्बन्धों में भी व्यक्ति के महत्त्व को समझा जाने लगा ।

मनोवैज्ञानिक कहानी

इस युग के जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय आदि कहानीकार बाहरी सामाजिक टकराहटों की अपेक्षा भीतरी तनावों पर अपनी दृष्टि अधिक केन्द्रित करते हैं । इन कहानीकारों की दृष्टि अब मानव व्यक्तित्व की भीतरी पर्तों में झाँकने की ओर उन्मुख है और इनकी कहानियाँ समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, राजनैतिक से वैयक्तिक और सार्वजनिक से व्यक्तिगत की ओर बढ़ती है । कहानी की यह यात्रा जैनेन्द्र और अज्ञेय से आरम्भ होती है और नयी कहानी के उन्मेष तक चलती दिखायी देती है ।

जैनेन्द्र कुमार-

जैनेन्द्र हिन्दी के पहले कहानीकार हैं जो पाठकों का ध्यान प्रेमचंद और प्रसाद की कहानियों से हटाकर अपनी और खींचते हैं । प्रेमचंद और प्रसाद के बाद हिन्दी कहानी के क्षेत्र में जैनेन्द्र ही बड़े कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं ।
जैनेन्द्र की कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वे घटनासूत्र तथा कथानक के विकास की अपेक्षा चरित्र-चित्रण, वातावरण और मन: स्थितियों के अंकन पर अधिक ध्यान देते हैं । मार्कण्डेय का जैनेन्द्र की कहानी कला के बारे में यह वक्तव्य काफी महत्त्वपूर्ण है, पहले जैनेन्द्र ने अपने मूल्यों के स्रोत के रूप में एक काल्पनिक संसार रचकर उसे अशरीरी पात्रों की छाया से आबाद किया और एक झूठी कथावस्तु के सहारे कहानी गढ़नी चाही । राजेन्द्र यादव उनके बारे में नयी बात दूसरी तरह से कहते हैं, जैनेन्द्र काफी हद तक अन्योक्ति, नीतिकथा, फैन्टेसी और बुद्धिगम्य स्थितियों के रूप में रचित कहानी का इस्तेमाल दार्शनिक निष्कर्षों के लिए करते हैं ।
जैनेन्द्र की कहानी कला का मूलाधार जीवन-दर्शन और मनोविज्ञान है । इन्हीं दोनों तत्त्वों से उन्होंने हिन्दी कहानी को समृद्ध किया है क्योंकि उन्होंने संख्या में काफी कहानियाँ लिखी हैं । वे अपनी दार्शनिक दृष्टि के बारे में 'एक रात' की भूमिका में स्पष्ट भी कर देते हैं, 'दार्शनिक तत्त्व के रूप में सत्य अत्यन्त गरिष्ठ है, इस रूप में वह सत्य अपरोक्ष भी है । वह अधिकांश के लिए अग्राह्य है । उसकी दृष्टांतगत चित्रगत और कथागत रूप में परिवर्तित करो, तभी वह रूचिकर और कार्यकारी बनता है ।"

उनकी कहानियों की भाषा जैनेन्द्र की अपनी भाषा है जिसमें कोई जटिलता नहीं, कोई अस्पष्टता नहीं, कोई बोझिलता नहीं । छोटे-छोटे वाक्य और सरल शब्दावली यह जैनेन्द्र की सबसे बड़ी ताकत है जो उन्हें हिन्दी का एक विशिष्ट कहानीकार बनाती है ।

अज्ञेय-

सच्चिदानंद हीरानंद ने अपने ही लेख अज्ञेय के बारे में 'हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियाँ' की भूमिका में लिखा है, अज्ञेय प्रथमत: मानव-चरित्र से सम्बद्ध कथाकार हैं । उनकी कहानियों में व्यक्तियों के चरित्र और अभिप्राय: का परिष्कृत विश्लेषण किया गया है और कहानी की रचना में कथाबन्ध की असामान्य दक्षता प्राप्त होती है । उनकी कहानी सामाजिक संघर्ष और भेदभाव की तस्वीर भी खींचती है और कई में अन्याय के विरूद्ध एक सशक्त आवाज भी उठायी गयी है किन्तु अज्ञेय का दृष्टिकोण प्राथमिक तौर से एक कवि का है जो सामाजिक संघर्ष के केवल वैयक्तिक, निजी को अपना विषय बनाता है । इससे उनकी रचना दृष्टि स्पष्ट हो जाती है ।

जैनेन्द्र को दार्शनिक कहानीकार माना गया है जबकि अज्ञेय को मनोवैज्ञानिक ।

अज्ञेय का गद्य अपने आप में अप्रतिम है । शब्द की ताकत को समझते हुए उसका प्रयोग करने की क्षमता जितनी अज्ञेय में है उतनी बहुत कम लोगों में होती है । उन्होंने अपनी कहानियों की कई शैलियों में लिखकर रोचक और पठनीय बनाया है । अज्ञेय की रोज' कहानी एक विशिष्ट कहानी है जो संवेदना के स्तर पर नयी कहानी से भी आगे की कहानी है ।

यशपाल-

यशपाल इस युग के सबसे महत्वपूर्ण कहानीकारों में है । विचारधारा से वामपंथी और जीवन में क्रान्तिकारी रहने के कारण उनकी रचना दृष्टि का निर्माण द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की चेतना से हुआ है । उनकी कहानियाँ निर्वैयक्तिक सामाजिक समस्याओं के धरातल पर टिकी हैं क्योंकि यशपाल के लिए रचनाकर्म मनुष्य के संघर्ष में शामिल होने का माध्यम है । वे अपनी रचनाओं में सर्वहारा की पक्षधरता करते हैं और पूँजीवादी शोषक व्यवस्था का विरोध करते हैं।

उनकी कहानियों का एक ओर पक्ष स्त्री-पुरूष संबन्धो की नयी व्याख्या है । उनकी कहानियाँ समस्या प्रधान हैं जिनमें समसामयिकता और यथार्थवादिता के साथ मनोविश्लेषण भी मिलता है । यशपाल का अपनी कहानियों में कथा विधान की विविधता और प्रयोग के प्रति उतना आग्रह नहीं है जितना लक्ष्य के प्रति है । 'फूलों का कुर्त्ता'' कहानी में वे सामाजिक मान्यताओं के खोखलेपन पर प्रहार करते हैं । वे सामाजिक, धार्मिक और व्यक्तिगत रूढ़ियों के प्रति बहुत तल्ख हैं । 'परदा' यशपाल की एक श्रेष्ठ कहानी है जिसमें वे मध्यवर्ग के व्यक्ति के झूठे अहं का बड़ी कुशलता से चित्रण करते हैं ।

इलाचन्द्र जोशी-

संक्रान्ति युग में इलाचन्द्र जोशी अकेले ऐसे कथाकार हैं जिन्हें मनोवैज्ञानिक कहानीकार कहा जा सकता है । उनकी अपनी मान्यता है, 'आधुनिक समाज में पुरूष की बौद्धिकता ज्यों- ज्यों बढ़ती जा रही हैं त्यों-त्यों उनका अहंभाव तीव्र से तीव्रतर और व्यापक से व्यापकतर रूप ग्रहण करता चलता है । अपने तृप्त न होने वाले अहं भाव की अस्वाभाविक पूर्ति की चेष्टा में जब

पग-पग पर स्वाभाविक सफलता मिलती है, तो वह बौखला उठता है और उसके बौखलाहट की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप वह आत्मविनाश के पहले अपने आस-पास के संसार के विनाश की योजना में जुट जाता है ।"

उपेन्द्र नाथ अश्क-

अश्क जी की कहानियों के पात्र सामान्य जिन्दगी के साधारण पात्र होते हैं । उनकी कहानियों में पति-पत्नी, किसान, मजदूर, कर्मचारी, व्यवसायी आदि सभी तरह के पात्र मिलते हैं । 'डाची' कहानीकार का बाकर, 'काले साहब' का रिक्शावाला, 'उबाल' का चंदन 'तीन सौ चौबीस' का हैदर आम आदमी है जो जीवन-संघर्ष में जूझ रहे हैं । ये पात्र यथार्थवादी पात्र हैं किन्तु अश्क की कहानियों में कुछ पात्र ऐसे भी हैं जिनकी रचना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हुई है और इन्हें 'टाइप' पात्र कहा जा सकता है । 'पिंजरा कहानी की शान्ति हमारे ह्रासोन्मुख समाज का प्रतीक है तो 'पत्नीव्रत' के खन्ना साहब स्वार्थी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं । किन्तु विशेष बात यह है कि अश्क की कहानियों के पात्र मानवीय धरातल पर टिके है इसलिए वे जीवंत लगते है ।

इनके अतिरिक्त इस युग में अन्य उल्लेखनीय कहानीकार हैं - भगवतीचरण वर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, पहाड़ी आदि । भगवतीशरण वर्मा प्रेमचंद की परम्परा के कहानीकार हैं । उनकी प्रसिद्ध कहानी 'प्रायश्चित' समाज के अन्धविश्वास की झूठी मान्यताओं पर तीखा व्यंग्य करती है तो 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' कहानी हमारे देश के निवासियों की कहानी का चित्रण बड़े कल्पनात्मक ढंग से करती है । निराला जी वैसे तो छायावादी काव्यधारा के प्रमुख स्तम्भ हैं किन्तु उन्होंने यथार्थवादी कहानियाँ भी लिखी हैं । इसी युग में प्रमुख कहानीकारों में पहाड़ी का नाम भी लिया जाता है । वे मनोवैज्ञानिक धारा के कहानीकार हैं किन्तु उनकी कहानियों को मूल समस्या सैक्स समस्या है ।

चौथे दशक में साहित्य का मंच प्रगतिवादियों के हाथ में है किन्तु पाँचवे दशक में भारत में गहरी उथल-पुथल होती है । दूसरे महायुद्ध की पृष्ठभूमि में स्वतंत्रता का आन्दोलन तीव्र होता है । भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रभाव पूरे देश पर पड़ता है । आजादी मिलती है तो देश को विभाजन की त्रासदी झेलनी पड़ती है और मारकाट के दृश्य लोगों को देखने पड़ते हैं । तीव्र राजनैतिक गतिविधियों के चलते 20वीं शताब्दी के पाँचवे दशक में हिन्दी कहानी की गति बहुत तेज नहीं रह पाती । किन्तु 1950 के बाद हिन्दी कहानी का विकास अपनी पूरी गरिमा के साथ होने लगता है और साहित्य के क्षेत्र में हम नयी-नयी प्रवृतियों का उन्मेष देखते हैं । हम छठे दशक में पाते हैं कि प्रगतिवादी हिन्दी कविता की उन प्रवृत्तियों पर प्रहार कर रहे हैं जिनका प्रतिनिधित्व अज्ञेय कर रहे थे तो कथा के क्षेत्र में जैनेन्द्र की व्यक्तिवादी चेतना भी उनकी आलोचना के केन्द्र में आ जाती है । इस तरह बहस के स्तर पर भी नयी पीढ़ी के रचनाकारों में एक नयी चेतना और ऊर्जा का उन्मेष हम स्वातन्त्र्योत्तर काल में पाते हैं और यही वह प्रस्थान बिन्दु हैं जहाँ से हिन्दी कहानी की नयी कहानी का परिदृश्य उभरता है । संक्षेप में स्वातन्त्र्योत्तर युग में भारतीय जीवन में परिवर्तन के विभिन्न रूपों को हम इन घटनाओं में देख सकते हैं -

स्वातन्त्र्योत्तर कहानीकार की कथा-दृष्टि में परिवर्तन

हिन्दी कहानी के प्रारम्भिक काल में कथाकार की दृष्टि घटनाओं तथा पात्रों के माध्यम से किसी नैतिक आदर्श तक पहुँचने की रही । प्रेमचन्द की कहानियों में भी यद्यपि सामाजिक समस्याओं तथा जीवन के यथार्थ के प्रति पूर्ण जागरूकता द्रष्टव्य है तथापि वे किसी सामाजिक आदर्श को सामाजिक या पारिवारिक यथार्थ के बीच स्थापित करते हैं । किन्तु उनकी अन्तिम दौर की कहानियों में - 'कफन', 'पूस की रात आदि में - प्रेमचन्द आदर्शवाद के केंचुल को उतारकर जीवन्त यथार्थ के धरातल पर आ जाते हैं । वस्तुत: प्रेमचन्द की ये यथार्थवादी कहानियाँ ही, जिनमें वे मानव को उसके यथार्थ परिवेश में चित्रित करते हैं, स्वातन्त्र्योत्तर कहानीकार की जीवन-दृष्टि का आधार है ।

परन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् के कथाकार की दुनिया सर्वथा एक नयी दुनिया थी । स्वतंत्रता मिलते हैं 'शताब्दियों दासता ही नहीं टूटी बल्कि नैतिक, आर्थिक मूल्यों के विघटन की, संक्रमण की विडम्बनाओं और मानवीय संकट ने तत्कालीन मध्यवर्गीय जीवन को भी तोड़ दिया ।' उसने व्यक्ति, समाज और राष्ट्रीय स्तर पर बनते-बिगड़ते सम्बन्धों, अवधारणाओं, मान्यताओं, परिस्थितियों, वैचारिक आदर्शों के बीच जूझती मानव प्रतिमा को रचनात्मक आग्रह के साथ स्वीकार किया क्योंकि 'आजादी के कुछ ही दिनों में वे यह महसूस करने लगे कि आजादी के पहले की सरल दुनिया का अंत हो गया । इस परिवेश में जो मानव प्रतिमा अपने अस्तित्व को काम रखने के लिए संघर्षरत थी उसके संघर्ष को कथाकार ने अनुभव किया क्योंकि स्वयं उसे इन सब सन्दर्भो से गुजरने के बाद ऐसा लगता है जैसे आज वह ठहराव आ गया हैं जब हमें खुद अपनी ही शक्लें अजनबी लगने लगी हैं ।लगता है स्वतंत्रता के बाद पूरा युग ही हमने भोगा नहीं है, वह हम पर लाद दिया गया है । '

स्वतन्त्रता के पश्चात् की विभिन्न कहानी धाराओं को मोटे तौर पर इन वर्गों में रखा जा सकता हैं ।

1. **आंचलिक कहानी की धारा -** फणीश्वरनाथ रेणु' इसके अग्रणी कथाकार थे ।
2. **ग्रामीण जीवन से सम्बद्ध कहानी धारा** - मार्कंडेय, काशीनाथ सिंह, शिवप्रसाद सिंह, लक्ष्मीनारायण लाल, भैंरवप्रसाद गुप्त, शैलेश मटियानी, रांगेय राघव, मधुकर गंगाधर, मधुकर सिंह, अवधनारायण सिंह आदि इस धारा के प्रतिनिधि कथाकार हैं ।
3. **अन्तर्राष्ट्रीयता से सम्बद्ध कहानी धारा -** उषा प्रियवंदा, निर्मल वर्मा, विजय चौहान आदि इसके प्रमुख कथाकार हैं ।
4. **महानगरीय जीवन से सम्बद्ध कहानी धारा -** कमलेश्वर, राजेंन्द्र यादव, मोहन राकेश, भीष्म साहनी, अमरकान्त, रमेश बक्षी, ज्ञानरंजन, धर्मवीर भारती, मन्नू भण्डारी, हरिशंकर परसाई, दूधनाथ सिंह आदि इस धारा के प्रमुख कथाकार हैं ।

हिन्दी कहानी के विभिन्न आन्दोलन

(क) नयी कहानी

नामकरण तथा स्वरूप विकास

स्वातन्त्र्योत्तर कहानी को 'नयी कहानी' के नाम से पुकारा गया तो निश्चय ही उसमें कुछ नयापन रहा होगा और यह नयापन ही उसे पूर्ववर्ती कहानी से अलग कर रहा होगा । 'नयी कहानी' शब्द का प्रयोग जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, अश्क, यशपाल के बाद आने वाली पीढ़ी की कहानी के लिए किया गया है तथा इस पीढ़ी का लेखन के क्षेत्र में उदय स्वातन्त्र्योत्तर काल में हुआ । 'नयी कहानी' नामकरण के जन्म का इतिहास खोजते हैं तो हम पाते हैं कि दुष्यन्तकुमार ने सबसे पहले 'नयी कहानी: परम्परा और शीर्षक' (कल्पना में प्रकाशित) अपने निबन्ध में नयी पीढ़ी की कहानियों में कुछ नयापन और मौलिकता देखकर उन पर विचार किया था । उन्हें मार्कण्डेय, अमरकान्त, राजेन्द्र यादव, विद्यासागर नौटियाल कमल जोशी, धर्मवीर भारतीय की कहानियों में नयेपन और प्रगति के कुछ चिह्न नजर आये थे । लेकिन दुष्यन्त कुमार अपने लेख में नामकरण की सार्थकता के विषय में किसी प्रकार का तर्कसंगत विवेचन नहीं करते ।

नयी कहानी के नामकरण की आवश्यकता का प्रश्न सर्वप्रथम डॉ. नामवर सिंह ने अपने लेख 'आज की हिन्दी कहानी' में उठाया और पूरे बल के साथ इस नाम का समर्थन किया । इस नाम की कहानी के साथ जोड़ने का श्रेय डॉ. नामवर सिंह को. ही जाता है । उन्होंने नयी कविता के सन्दर्भ में नयी कहानी के नामकरण का प्रश्न उठाते हुए कहा, "मेरे मन में यह सवाल उठता है कि 'नयी कविता' की तरह 'नयी कहानी' नाम की कोई चीज है क्या?" इसके आगे वे कहते हैं कि 'नयी कहानी' नाम से कोई आन्दोलन अभी तक नहीं चला है । इससे क्या समझा जाये? यह कि कहानी में कुछ नयापन आया ही नहीं, कि कहानी में जो नयापन आया है, वह कविता की अपेक्षा बहुत कम है।"

किन्तु 'नयी कहानी' के विषय में नामवर सिंह के विचार समय-समय पर विकसित होते रहे हैं । वे कभी सांकेतिकता को या कभी सूक्ष्म वातावरण को या संगीतात्मकता को या कथा विन्यास को या वास्तव में विविध आयामों को या नवीन दृष्टि को - 'नयी कहानी' का आधार मानकर उसका मूल्यांकन करते रहे हैं । उन्होंने एक विभिन्न बात यह भी कही कि कहानी की चर्चा में "अनायास ही 'नयी कहानी' शब्द चल पड़ा है और सुविधानुसार इसकाप्रयोग कहानीकारों ने भी किया है और आलोचकों ने भी ।" किन्तु उनका अनायास वाला कथन इसलिए सत्य प्रतीत नहीं होता कि नामकरण की आवश्यकता सबसे पहले उन्होंने ही महसूस की और उन्होंने ही यह नाम दिया ।

नयी कहानी की उपलब्धियाँ

नयी कहानी ने हिन्दी साहित्य में एक वातावरण बनाया था, वह बहुत सर्जनात्मक और साहित्यिक वातावरण था । "इस आन्दोलन के प्रारम्भिक दौर की यह बहुत बड़ी उपलब्धि है कि उसने कहानीकारों को एक लम्बी पीढ़ी हिन्दी कहानी को दी । नयी कहानी आन्दोलन के दौरान ऐसा वातावरण बनाया गया था कि नये कहानीकारों में यह होड़ लगी कि कौन किससे बेहतर कहानी लिखता है ।" इतना ही नहीं, इस आन्दोलन के कारण "नये कहानीकारों को खूब लिखने और अच्छा लिखने की प्रेरणा मिलती थी । उस समय जो अच्छी कहानी छपती

थी, बहुत चर्चित होती थी ।" यह नयी कहानी आन्दोलन का ही परिणाम था कि कहानीकारों की पीढ़ी के साथ डी. नामवर सिंह, हृषिकेश, सुरेन्द्र चौधरी, धनंजय शर्मा, देवीशंकर अवस्थी, मधुरेश जैसे कहानी के व्याख्याकार भी तैयार हुए । कहने का तात्पर्य यह है कि नयी कहानी आन्दोलन सर्जन एवं विवेचना, दोनों दृष्टियों में बहुत समृद्ध और गतिशील आन्दोलन था ।

(ख) सचेतन कहानी

उद्भव तथा नामकरण

नयी कहानी आन्दोलन के उत्तरार्द्ध में यह आन्दोलन बहुत थोड़ेसे कथाकारों तक सीमित रह गया तथा वह धीरे-धीरे सामाजिक समस्याओं से कटने लगा । सन् 1960 तक नयी कहानी रूढ़ होने की स्थिति में आ गयी थी और उसमें एक खास किस्म का मैनरिज्म पैदा हो गया था । नयी कहानी की रूढ़ि और उसके मैनरिज़्म को तोड़ने की दृष्टि से हिन्दी कहानी में जो आन्दोलन उभरे उनमें सचेतन कहानी-आन्दोलन एक महत्वपूर्ण आन्दोलन है । इसका प्रारम्भ नवम्बर,1964 में प्रकाशित 'आधार' के 'सचेतन कहानी विशेषांक' के प्रकाशन से माना जाता है जिसका सम्पादन डॉ. महीप सिंह ने किया था । उन्हीं के शब्दों में, सचेतन आन्दोलन साहित्यिक संचेतना की सामूहिक प्रतिक्रिया है । इसके सूत्र बम्बई में 'रचना' द्वारा आयोजित गोष्ठियों में हैं । गत अप्रेल में 'मनीषा' द्वारा दिल्ली में आयोजित गोष्ठी में यह चर्चा और मुखर होकर सामने आयी ।

डॉ. महीप सिंह ने ही 'सचेतन कहानी' आन्दोलन का प्रस्तावना किया था । 'आधार' के इस विशेषांक में महीप सिंह, राजीव सक्सेना, उपेन्द्रनाथ अश्क, श्याम परमार आदि ने सचेतन कहानी सम्बन्धी दृष्टिकोण को स्पष्ट किया तथा इस अंक में आनन्दप्रकाश जैन, कमल जोशी, कुलभूषण, धर्मेन्द्र गुप्ता, मधुकर सिंह, मनहर चौहान, महीप सिंह, योगेश गुप्त, वेदराही, सुखवीर, हिमांशु जोशी आदि 20 कहानीकारों की कहानियाँ छपीं । बाद में महीप सिंह ने 'संचेतना' नाम से एक त्रैमासिक पत्रिका का सम्पादन प्रारम्भ किया, जो सचेतन कहानी-आन्दोलन का प्रमुख मंच बनी और सुदर्शन नारंग के संपादन में 'श्रेष्ठ सचेतन कहानियाँ' शीर्षक से एक संग्रह भी प्रकाशित हुआ ।

(ग) अकहानी

पृष्ठभूमि - 1960 तक आते-आते कुछ ऐसी परिस्थितियाँ बनीं कि स्वतंत्रता का जिस उल्लास और उत्साह के साथ स्वागत किया था, वह ठंडा होने लगा था और हम एक मोह-भंग की स्थिति में आ पहुँचे थे । हमें लगने लगा था कि समाज में सभी जातीय और राष्ट्रीय मूल्य समाप्त हो चुके हैं और हमारे समक्ष एक अंधकार, पूर्णतया निराशापूर्ण भविष्य के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है । हमने स्वतंत्र भारत के विषय में जो स्वप्न संजोए थे, वे सब टूटते हुए दिखायी देने लगे । देश में राजनीतिक उथल-पुथल, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार और मूल्यहीनता से स्वतंत्रता के पश्चात् होश सम्हालने वाली पीढ़ी को आहत किया । पतनोन्मुख घटनाओं ने देश की चेतना को धार्मिक, आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, सामाजिक सभी स्तरों पर झकझोर दिया । व्यक्ति आशान्वित था किन्तु उसकी तुलना में निराशा अधिक थी, अनपेक्षित स्थितियों के कारण उसमें

अविश्वास और आश्चर्य की स्थिति उत्पन्न हुई फलस्वरूप व्यक्ति अपनी आन्तरिकता में केवल आहत ही नहीं हुआ, अपितु टूट भी गया ।"

इस निराशा - भरे वातावरण में हिन्दी कहानी को जिस नयी धारा का सूत्रपात हुआ उसे कहानीकारों तथा समीक्षकों ने अकहानी के नाम से अभिहित किया । साठोत्तरी कहानी को डॉ. गंगाप्रसाद विमल ने पहले तो 'समकालीन कहानी' से पुकारा, किन्तु शीघ्र ही उन्होंने समकालीन, कहानी के स्थान पर 'अकहानी' की व्याख्या प्रारम्भ कर दी और सन् 1960 के बाद हिन्दी कहानी के क्षितिज पर 'अकहानी' की व्याख्या प्रारम्भ कर दी और सन् व 1960 के बाद हिन्दी कहानी के क्षितिज पर 'अकहानी' एक आन्दोलन के रूप में उग आयी, जिसके पक्षधरों में डॉ. गंगाप्रसाद विमल, जगदीश चतुर्वेदी, रवीन्द्र कालिया, दूधनाथ सिंह, प्रयाग शुक्ल, सुधा अरोड़ा, ज्ञानरंजन, रमेश बक्षी, श्रीकांत वर्मा, विजय मोहन सिंह, विश्वेश्वर आदि थे । इसी आन्दोलन की स्थापना के लिए 'अकहानी' शीर्षक से श्याममोहन श्रीवास्तव तथा सुरेन्द्र अरोड़ा के संपादन में एक पुस्तक भी प्रकाशित हुई, जिसकी भूमिका में 'अकहानी' की व्याख्या की गयी तथा जिसमें उक्त कहानीकारों की कहानियाँ भी संकलित की गयीं । अकहानी आन्दोलन एक तत्कालीन जीवन स्थितियों की भयावहता का परिणाम था तो दूसरी ओर नयी कहानी की जड़ता को तोड़ने का प्रयास था जैसा कि विश्वेश्वर ने कहा था, "साठोत्तर या अकहानी की आवाज पुरानी पड़ती जा रही पीढ़ी के 'भोगे हुए यथार्थ, 'अनुभव की प्रामाणिकता', 'प्रतिबद्धता' जैसे खोखले नारों के खिलाफ एक सख्त कार्यवाही थी । इस आवाज ने नयी कहानी के झंडाबरदारों को उनके, पुराने पड़ जाने का अहसास कराया और उन्हें बिलकुल उसी तरह बौखला दिया, जैसे अपने जमाने में उन्होंने जैनेन्द्र, अज्ञेय आदि को बौखलाया था ।"

नामकरण तथा स्वरूप

अकहानी पश्चिम में जन्मी 'एंटी-स्टोरी' का रूपांतरण है किन्तु 'एंटी नॉवेल' पश्चिम का एक स्वीकृत आन्दोलन है । ऐसा प्रतीत होता है कि अकहानी का प्रेरक यही 'एंटी-नॉवेल' आन्दोलन है । 'एंटी-नॉवेल' नामक आन्दोलन से रॉब्ब ग्रिए, मैडम सारा तथा बार्थस के नाम जुड़े हुए हैं जिनके लिए "अकथा सम्बन्धी आन्दोलन केवल फार्म या शिल्प का आन्दोलन नहीं है - वह एक निश्चित दृष्टिकोण और जीवन-दर्शन का आन्दोलन है - रॉब्ब ग्रिए के लिए इंसानी हरकतें किसी दूसरी वस्तुओं से भिन्न नहीं है । वे सिर्फ उतनी ही हैं जितनी नजर आती हैं- दूसरी तमाम वस्तुओं के साथ हरकत करती हुई यांत्रिक और ठोस।"

इसका अर्थ यह हुआ कि अकहानी में असम्बद्धता है तथा वह कहानी की परम्परागत अवधारणाओं को अस्वीकार करती है । वह अमूर्ति कथा-विधा अथवा शिल्पहीन कहानी है, "अकहानी कहानी की धारणागत प्रतीति के सभी वर्गीकरणों, मूल्यांकन आधारों और पूर्व समीक्षाओं को अस्वीकार करती है ।"

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि अकहानी पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक और साहित्यिक मूल्यों के विघटनात्मक स्वरूप की अभिव्यक्ति है । अकहानी में व्याप्त मूल्यहीनता देश के राजनीतिक-सामाजिक जीवन के अवमूल्यन से सम्बन्ध रखती है । इस अवमूल्यन के सन्दर्भ में हमें 1962 में मिली चीन से पराजय तथा 1965 में रूपये का अवमूल्यन स्मरण हो जाता

है, "यह अवमूल्यन मुद्रागत ही नहीं था, बल्कि इसके साथ गहरे स्तरों पर राष्ट्रीय प्रतिमा की भग्न होती गरिमा और सांस्कृतिक मूल्यों के विघटन भी शामिल थे ।"

उपलब्धियाँ

अकहानी की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उसने कहानी में एक आक्रामक मुद्रा को स्वीकार किया और नयी कहानी में उत्पन्न हुई लिजलिजी भावुकता से उसे मुक्त किया । उसने सभी प्रकार के मूल्यों को अस्वीकार किया और शिल्प के स्तर पर नये प्रतीकों, नये बिम्बों तथा नये संकेतों को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया । अकहानी सूक्ष्म अभिव्यक्ति पर बल देती है, इसलिए उसमें अमूर्तता का आधिक्य है । अकहानी की सबसे बड़ी उपलब्धि तो यही है कि उसने नयी कहानी द्वारा स्थापित आभिजात्य को तोडा तथा हिन्दी कहानी को एक नयी दिशा प्रदान की । शिल्प के बचकाने दुराग्रह से, कविता के आत्मपरक बिम्बों से, क्षण, चित्रों और अनुभूति के मीठे और रोमानी उपकरणों से भी उसने छुटकारा पाया है - कहानी अपने इसी रूप में 'व्यापक' और 'विशेष' दोनों बनी हैं ।

(घ) समान्तर कहानी

इसी कारण कमलेश्वर मशीन और मजदूर का, किसान और खेत का रिश्ता तय करने पर बल देते हैं । उनके लिए तो "संस्कृति और कुछ नहीं, परिवेशगत सच्चाइयों की कोख से जन्मे मूल्य और विचारों का संस्कारित रूप है ।"

समांतर कहानी का संघर्ष नैतिक मूल्यों के संस्थापन के लिए किये जाने वाला संघर्ष है । 'अंधे कुएँ का रास्ता' (अरूण मिश्र), 'चौथा आश्चर्य' (जवाहर सिंह), 'सुरंग में पहली सुबह' (बसंत कुमार) कहानियों के पात्र भ्रष्ट तंत्र से जूझ रहे हैं । ईमानदार रहकर हानि उठाते हैं किन्तु वे अपना रास्ता नहीं छोड़ते और निराश नहीं होते । 'एक चालू आदमी' (दिनेश पालीवाल) का नायक जानता है कि इस दैत्याकार व्यवस्था को बदलने की सामर्थ्य उसमें नहीं है, पर वह बराबर प्रयत्न करता रहता है । 'आंदोलन' (कान्हजी तोमर) कहानी में पिता लड़कों के मौन जुलूस की अग्रिम पंक्ति में शामिल होने का जोखिम उठाते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि व्यवस्था को बदलने के लिए यह आवश्यक है । 'आदमी' (आशीष सिन्हा) कहानी का कारिया समझ नहीं पाता कि हाड़तोड़ परिश्रम करने के बाद भी उसका पेट क्यों नहीं भर पाता । मानिया बताता है कि उसकी मेहनत कोई चुरा ले जाता है । श्रमिक का श्रम चुराने वालों के विरूद्ध शोषित जन सतर्क और संगठित हो जाते हैं ।

(च) जनवादी कहानी

जहाँ तक आन्दोलन के रूप में जनवादी कहानी के उदय का प्रश्न है, "जनवादी कहानी का उदय सातवें दशक के अन्तिम वर्षों में माना जाता है । लेकिन उसका वास्तविक उभार आठवें दशक में देखने को मिलता है ।" वस्तुत: जनवादी कहानी - आन्दोलन समूचे जनवादी आन्दोलन से जुड़ा हुआ है । दिल्ली विश्वविद्यालय में 1977 में 'जनवादी विचार मंच' की स्थापना हुई तथा इसी मंच के तत्वावधान में 14- 15 अक्टूबर, 1978 को दिल्ली में हिन्दी के लेखकों का एक शिविर आयोजित किया गया जिसमें दिल्ली, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, बिहार, मध्यप्रदेश, पश्चिमी बंगाल के लगभग 250 लेखकों ने भाग लिया । शिविर का केन्द्रीय

विषय था - '1967 से 1977 तक जनवादी साहित्य के दस वर्ष' । इसी शिविर में जनवादी कहानी पर दो निबन्ध पढ़े गये - 'जनवादी कथा-रचना की समस्याएँ' (असगर वजाहत) तथा 'जनवादी कहानी : स्वरूप और समस्याएँ' (चारू मित्र, प्रदीप मांडव) । इसी शिविर में 'आज का कथा साहित्य : सार्थकता की तलाश शीर्षक से डॉ. कुंवरपाल सिंह ने भी एक निबन्ध पढ़ा जिसमें उन्होंने जनवादी कहानी तथा उपन्यास पर समग्र रूप से विचार किया ।

इस शिविर को हम जनवादी कहानी - आन्दोलन की भूमिका मान सकते हैं किन्तु इस आन्दोलन की तीव्र गति 1982 में 'जनवादी लेखक संघ' की दिल्ली में स्थापना के साथ मिली । 13-14 फरवरी, 1982 को दिल्ली में जनवादी लेखक संघ का प्रथम राष्ट्रीय अधिवेशन हुआ जिसमें इस संघ का संविधान भी स्वीकृत हुआ । इस अधिवेशन के पश्चात् जनवादी कहानी पर 'कलम' (कलकत्ता), 'कथन' (दिल्ली), 'उत्तरगाथा' (मथुरा से प्रकाशित होती थी पर इसे दिल्ली से प्रकाशित किया जाने लगा), उत्तरार्द्ध' (मथुरा), कंक (रतलाम) जैसी पत्रिकाओं में व्यापक रूप से चर्चा प्रारम्भ हो गयी । हम जनवादी आन्दोलन का प्रारम्भ जनवादी लेखक संघ की स्थापना के साथ ही मान सकते हैं ।

(छ) समकालीन कहानी

इसमें दो राय नहीं कि स्वातन्त्र्योत्तर काल में कहानी हिन्दी साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा रही है । कविता के वर्चस्व के बावजूद कहानी ने केन्द्रीय स्थान ग्रहण किया है । इसमें भी संदेह नहीं कि देश की बदलती परिस्थितियों की जितनी गहराई से कहानी ने आत्मसातयिका है उतना अन्य किसी विधा ने नहीं । छठे, सातवें तथा आठवें दशक में हिन्दी में बड़े घरानों से निकलने वाली पत्रिकाओं तथा लेखकों के अपने प्रयासों से निकलने वाली पत्रिकाओं का हिन्दी साहित्य क्षितिज पर पूर्ण आलोक है । आठवें दशक के अन्तिम वर्षों में कुछ व्यापारिक दबावों के चलते बड़े घराने इन पत्रिकाओं के प्रति उदासीन से होने लगते हैं । पहले 'दिनमान' का प्रकाशन बंद होता है फिर 'सारिका', 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' आदि का । 'कहानी', 'नई कहानियाँ', 'कल्पना' आदि पत्रिकाएँ भी इनसे पूर्व बंद हो चुकी थीं । इस कारण हम पाते हैं कि आठवें-नवें दशक में एक साहित्यिक शून्य उत्पन्न हो गया है । साहित्यिक चर्चाएँ काफी धीमी पड़ने लगी हैं ।

किन्तु इस शून्य को भरने का कार्य वरिष्ठ कथाकार राजेन्द्र यादव द्वारा सम्पादित प्रकाशित 'हंस' का 1986 में प्रकाशन करता है । एक ओर यह मासिक प्रेमचन्द के 'हंस' की परम्परा को पुनर्जीवित करती हैं दूसरी ओर नयी बहसों को जन्म देती है । 'हंस' यों कहानी प्रधान पत्रिका है पर उसने सामयिक मुद्दों को पूरी शिद्धत से उठाया है और साहित्यिक बहसों -को फिर जीवित किया है । इतना ही नहीं 'हंस' से प्रेरित होकर 'कथादेश' का प्रकाशन आरम्भ होता है और एक बार फिर सम्बोधन', 'वागर्भ', 'तद्भव, 'समय माजरा', 'सोच', 'संधान', 'पल प्रतिपल', 'वर्तमान साहित्य' जैसी अनेक पत्रिकाएँ हिन्दी साहित्य के विकास में अपना योगदान देती है । 'पहल' पत्रिका का उल्लेख करना यहाँ समीचीन रहेगा क्योंकि 'पहल' ने लघु पत्रिका आन्दोलन को सशक्त बनाए रखा है और लघु पत्रिकाओं की परम्परा को अक्षुण्ण रखा है ।

समकालीन कहानी जीवन के यथार्थ को बड़ी गहराई से रूपायित करती हैं इसलिए समकालीन कहानियों में वर्तमान युग की सभी विसंगतियों का बड़ा हृदय विदारक वर्णन हुआ है । ये कहानियाँ न तो स्तब्ध करती हैं न पाठक का मनोरंजन करती हैं बल्कि पाठक को झकझोरती हैं । जीवन का चाहे राजनैतिक पक्ष हो चाहे सामाजिक, आर्थिक पक्ष हो चाहे सांस्कृतिक हिन्दी कहानी हर पक्ष को उसकी समस्त विद्रूपताओं के साथ उभारती हैं ।

'हंस' पत्रिका के मंच से स्त्री विमर्श तथा दलित विमर्श चर्चा के केन्द्र में आए । हिन्दी कहानी में ये दोनों विमर्श समाहित हुए । स्त्री विमर्श को हम दो स्तरों पर कहानियों में देख सकते हैं- स्त्री जीवन की विडम्बनाओं को लेकर लिखी गयी कहानियाँ तथा स्त्री लेखिकाओं द्वारा लिखी गयी कहानियाँ । औरत को भूमण्डलीकरण तथा बाजारीकरण ने, सारे स्त्री-मुक्ति आन्दोलन के बावजूद, बाजार में लाकर खड़ा कर दिया है और उसे एक उपभोग की वस्तु मात्र में तब्दील कर दिया गया है । इस दृष्टि में हम पाते हैं कि शिवमूर्ति की 'तिरिया चरित्तर', 'केशर कस्तुरी', 'कसाईवाड़ा' आदि कहानियों में स्त्री के शोषण की क्रूर व्यथा है । सुवास कुमार की 'मादा', 'स्थानपूर्ति', 'एक डायरी की मौत' आदि कहानियों में वर्तमान जीवन में नारी की स्थिति की पड़ताल करती है । शैवाल की 'दामुल' तथा प्रियंवद की 'एक पवित्र पेड' कहानियाँ भी इसी श्रेणी में आती है ।

समकालीन कहानी के विकास में स्त्री कथाकारों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है । पुरानी पीढ़ी की लेखिकाओं में मन्नू भण्डारी ने लेखन लगभग छोड़ दिया है । उनकी एकाध कहानी जरूर इस दौरान छपी है । कृष्णासोबती जब लिखती हैं तो कुछ नया देती हैं - 'ए ! लड़की' कहानी इसका प्रमाण है । किन्तु इधर महिला लेखिकाओं की एक लम्बी पीढ़ी ने कहानी लेखन के क्षेत्र में बहुत महत्त्वपूर्ण कहानियाँ दी हैं - मैत्रेयी पुष्पा (चिन्हार, ललमनिया, गोमा बहती है आदि), राजी सेठ (मैं तो जन्मा ही), लवलीन(छिनाल, चक्रवात), मृणाल पाण्डेय (चार दिन की जवानी तेरी), चित्रा मुद्गल (जिनावर जगदम्बा बाबू आ रहे हैं), मृदुला गर्ग (समागम मेरे देश की मिट्टी आहा), चन्द्रकान्ता (काफी बर्फ), सुधा अरोड़ा (काला रजिस्टर), अल्का सरावगी (कहानी की तलाश में), क्षमा शमा (इक्कीसवीं सदी का लड़का), गीतांजलि श्री (वैराग्य), उर्मिला शिरीष, लता शर्मा, दूर्वासहाय, जयाजादवानी आदि अनेक महिला कहानीकार पूरी रचनात्मकता के साथ कहानी लेखन में सक्रिय है ।

समकालीन कहानी में जो सबसे प्रभावशाली लेखक हैं उनमें संजीव, स्वयंप्रकाश, अखिलेश, संजय खाती, उदय प्रकाश, शैलेन्द्र सागर आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । संजीव के पास अनुभव का व्यापक संसार है इसलिए उनकी कहानियाँ मानव अस्मिता की रक्षा में व्याकुल कहानियाँ हैं - 'सागर सीमांत' से 'आरोहण' तक संजीव की हर कहानी पाठक के अनुभव को समृद्ध करती है, इस दृष्टि से कि उसकी मानवीय संवेदनाओं को स्पर्श करती है । 'संजय' की 'कामरेड का कोट' कहानी की बहुत अधिक चर्चा रही क्योंकि यह कहानी एक वामपंथी विचारधारा वाले व्यक्ति के विचारों को रेखांकित करती है ।

समकालीन कहानीकारों में उदयप्रकाश सर्वाधिक चर्चित और विवादास्पद कहानीकार हैं । इसके दो कारण हैं - वे अपनी हर कहानी किसी प्रसिद्ध परिचित व्यक्ति को आधार बनाकर लिखते

हैं जैसे 'रामसजीवन की प्रेम कथा' में गोरख पाण्डेय है, दूसरे, उनकी कहानियों पर किसी भारतीय या विदेशी लेखक की कहानी के प्रभाव का आरोप लगाता रहा है जैसे 'छप्पन तोले का करधन' कहानी पर आरोप लगा था कि यह बिहार के किसी लेखक की कहानी की नकल है । उदय प्रकाश अपनी कहानियों में शिल्प के प्रति बहुत सजग हैं तथा वे अपनी कहानियों में जादुई यथार्थ का खूब उपयोग करते हैं । 'पालगोमरा का स्कूटर' तथा 'वारेन हेस्टिंग्ज का सांड' कहानियाँ उदाहरणस्वरूप देखी जा सकती है । 'पालगोमरा का स्कूटर' कहानी में वे विज्ञापनों द्वारा अपसंस्कृति का प्रचार, डंकल का आतंक, शहर में बढ़ते अपराध, उत्तराखण्ड की महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार आदि घटनाओं के विवरण मिलते हैं ।